मास्को
सितम्बर ०७, २००८

सन्देश संख्या १५४

‘मैं’ के कारण मनुष्यता नरक के कारागार में

तथाकथित व्यवस्थित समाज में एक व्यक्ति को कुछ सुविधाएँ एवं सन्तुष्टि पाने के बदले सामाजिक–समझौते के अन्तर्गत अपनी स्वतन्त्रता का कुछ अंश त्यागना पड़ता है । विभिन्न समाजों में शक्ति एवं सत्ता की संरचनाएँ भी भिन्न–भिन्न होती हैं और इन्हीं के कारण द्वन्द्व, ईर्ष्या, उत्पीड़न, विविध विचारधाराओं, राजनीति एवं शक्ति की खोज का भी प्रारंभ होता है । चाहे स्वतन्त्रता की माँग हो, उसके आंशिक त्याग की माँग हो या उसमें परिवर्तन की माँग हो ये सभी माँगे ‘मैं’ के बंधनों, इसके अन्तहीन आडम्बरपूर्ण एवं स्वार्थपूर्ण गतिविधियों के कारण उत्पन्न होती है । मनुष्य जाति में विभेदकारी चित्रवृत्ति के गर्भ से भ्रामक ‘मैं’ का जन्म स्वतः हो जाता है और इसी कारण मानव–चित्त में सभी प्रकार की भ्रान्तियाँ, दबाव, पूर्वाग्रह एवं प्रदूषण चिर काल तक सुरक्षित और संरक्षित बने रहते हैं । ‘मैं’ की स्वतन्त्रता उसके बन्धनों को ही केवल बाहरी रूप से या आंशिक रूप से सजाने सवाँरने तक सीमित है । इस ‘मैं’ की स्वतन्त्रता ही अन्ततः राष्ट्रवाद, धर्म, गुरू, सम्प्रदाय, पंथ और अन्य राजनीतिक माफियाओं के बैनर तले युद्ध एवं जन–संहार का कारण बनती है । ‘मैं’ के पास जो जानकारी होती है, वह ‘स्वतन्त्रता’ तो दे नहीं सकती, उल्टे नए बन्धनों के सृजन का हेतु बनती है । उदाहरण के लिए, इस देश में, मार्क्सवाद की विचारधारा ने लोगों के ऊपर जारों की दासता के स्थान पर स्टालिन और उसके सहयोगियों की दासता थोप दी । भारत में, गाँधीवादियों के ‘मैं’ द्वारा लाई गई तथाकथित राजनीतिक स्वतन्त्रता अन्ततः भ्रष्ट राजनेताओं एवं अधिकारियों के घोर शोषण के चलते अर्थहीन और खोखली हो गई । ‘मैं’ द्वारा निर्मित कोई भी स्वतन्त्रता वस्तुतः सतही और मूर्खतापूर्ण ही होती है । अतः वह मनुष्यों में मौलिक परिवर्तन ला ही नहीं सकती है ।

‘मैं’ के समर्पण को उपलब्ध होने की स्वतन्त्रता ही पूर्ण एवं सबसे गहरी स्वतन्त्रता है । किन्तु ‘मैं’ के बंधनों का जाल एवं पूर्वाग्रहों का बोझ मनुष्य को समर्पण की बिना शर्त स्वतन्त्रता को उपलब्ध होने की अनुमति नहीं देते । स्वतन्त्रता का यह अभाव ही मनुष्य जाति की दुर्दशा, पीड़ा संताप एंव नाना प्रकार के दुःख भोग का कारण है । समर्पण को उपलब्ध होने की स्वतन्त्रता का अर्थ है – मिथ्या मानसिक सत्ता अर्थात् अहंभाव से पूर्ण मुक्ति । इसका अर्थ है कि धर्मग्रन्थों, आध्यात्मिक ठगों, आडम्बरयुक्त परमहंसों या छद्म महर्षियों की मण्डलियों पर निर्भरता कदापि नहीं है । कृपया यह समझें कि जब भी कोई कहता है कि ‘‘मैंने समर्पण कर दिया है’’, तब इसका अर्थ केवल यही है कि उसने मानसिक निर्भरता हेतु किसी व्यक्ति, विचार या वस्तु का आश्रय खोज लिया है। जब भी कोई व्यक्ति कहता है – ‘‘मैं स्वतन्त्र हूँ’’, तब इसका अर्थ है कि वह स्वतन्त्र नहीं है क्योंकि ‘‘मैं’’ स्वयं ही बन्धन है । वास्तव में स्वतन्त्रता उस दर्शन में निहित है, जिसमें ‘जो देखा जा रहा है’, उसमें ‘‘मैं’’ किसी विचार या शब्द का कोई हस्तक्षेप नहीं है । विचार ही वास्तविक खलनायक है जो प्रत्यक्षबोध एवं सजगता की राह में बाधक बनता है तथा मनुष्य के लिए बन्धन का सृजन करता है । ‘जो है’ से परे, कुछ ‘बनने’ की पूर्ण समाप्ति ही स्वतन्त्रता का उदय है । समर्पण के लिए स्वतन्त्र होना ही वास्तविक धार्मिक होना है । किन्तु इसका अर्थ व्यक्ति का पलायनवादी होना नहीं है, अपितु जीवन की सम्पूर्णता में सहभागी होना है, उसके प्रति उत्तरदायी होना, जवाबदेह होना है।

‘प्रेम’ करने में समर्थ वही होता है जो वस्तुतः स्वतन्त्र होता है । प्रेम जीवनी शक्ति है जो अद्वैत में स्थित अन्तर अस्तित्व से प्रवाहित होती है और यह केवल भीतर से बाहर की ओर प्रवाहित होती है । इस प्रेम को उपलब्ध होने के लिए व्यक्ति का स्वतन्त्र होना आवश्यक है । इसका अर्थ, एक ऐसा व्यक्ति होना है, जो अनुक्रिया करता है, प्रतिक्रिया नहीं, जो भीतरी एवं बाहरी सत्ता के सभी बन्धनों एवं उन पर निर्भरता का रहस्य समझ चुका है और उनसे परे जा चुका है अर्थात् उनसे मुक्त हो चुका है ।

।। जय समर्पण ।।